National Journal of Advanced Research
www.thestudiesjournal.com
ISSN: 2455-216X
Received: 13-11-2025, Accepted: 12-12-2025, Published: 27-12-2025
Volume 11, Issue 2, 2025, Page No. 80-81

'प्रतियोगी' कहानी में बाजारवाद का जादू और पारंपरिक व्यवसायों का संकट

बाबू लाल बेनीवाल
सहायक आचार्य, राजकीय महविद्यालय कोटड़ा, उदयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश
नीलाक्षी सिंह की कहानी "प्रतियोगी" समकालीन हिंदी कथा–साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें बाजारवाद के विस्तार और उसके परिणामस्वरूप पारंपरिक व्यवसायों के संकट को अत्यंत सूक्ष्म, रूपकात्मक और मानवीय दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। यह कहानी केवल आर्थिक परिवर्तन की कथा नहीं है, बल्कि वह सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक रूपांतरण की प्रक्रिया को भी उजागर करती है। कहानी का केन्द्रीय रूपक 'बाजार' एक जादूगर के रूप में उभरता है, जो मनुष्य की चेतना को सम्मोहित कर उसके स्वाद, इच्छाओं और जीवन–दृष्टि को बदल देता है। जलेबी, कचरी और पिअजुआ जैसे पारंपरिक खाद्य–व्यवसायों के माध्यम से लेखिका यह दिखाती हैं कि किस प्रकार स्थानीय, लोकजीवन से जुड़े व्यवसाय वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की आँधी में हाशिये पर धकेल दिए जाते हैं। इस शोध–पत्र का उद्देश्य कहानी में निहित बाजारवादी जादू, प्रतिस्पर्धा की संस्कृति तथा उसके कारण उत्पन्न पारंपरिक व्यवसायों के संकट का विश्लेषण करना है।

मूल शब्दः बाजारवाद, प्रतियोगिता, पारंपरिक व्यवसाय, उपभोक्तावाद, जादूगर

प्रस्तावना
बीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में भारतीय समाज तीव्र आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गुज़रा है। उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की नीतियों ने न केवल आर्थिक संरचनाओं को बदला, बल्कि मनुष्य की सोच, आकांक्षाओं और जीवन–मूल्यों को भी गहराई से प्रभावित किया। बाजार अब केवल वस्तुओं के लेन–देन का माध्यम नहीं रह गया; वह एक ऐसी सर्वव्यापी शक्ति बन चुका है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है।
नीलाक्षी सिंह की कहानी "प्रतियोगी" इसी बदलते यथार्थ की कथा है। यह कहानी कस्बाई जीवन की पृष्ठभूमि में बाजार के विस्तार और उसके प्रभावों को प्रस्तुत करती है। यहाँ बाजार एक अमूर्त व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सजीव, सक्रिय और जादुई शक्ति के रूप में उपस्थित है। कहानी यह प्रश्न उठाती है कि क्या विकास और आधुनिकता की दौड़ में परंपरागत व्यवसायों, लोकसंस्कृति और मानवीय मूल्यों की बलि अनिवार्य है।

बाजारवाद का जादू
नीलाक्षी सिंह की कहानी "प्रतियोगी" में बाजारवाद को एक सफेद दाढ़ी वाले बूढ़े जादूगर के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पूरी कथा का सबसे सशक्त और अर्थगर्भित रूपक है। यह जादूगर कोई साधारण पात्र नहीं, बल्कि आधुनिक पूँजीवादी बाजार की वह अमूर्त शक्ति है, जो मनुष्य की चेतना पर अधिकार कर लेती है। जादूगर का मनुष्य के मन को शरीर से अलग कर अपनी तलहथी पर रख लेना इस बात का प्रतीक है कि बाजार व्यक्ति की सोच, निर्णय और इच्छाओं को अपने नियंत्रण में कर लेता है। व्यक्ति भौतिक रूप से स्वतंत्र रहते हुए भी मानसिक रूप से बाजार का दास बन जाता है।
इस रूपक के माध्यम से लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि बाजार केवल वस्तुओं की खरीद–बिक्री तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की आकांक्षाओं को गढ़ता है। वह जरूरत और लालच के बीच की रेखा को मिटा देता है। छक्कन प्रसाद का अपने पारंपरिक व्यवसाय से असंतुष्ट होना और "कुछ बड़ा" करने की बेचैनी इसी बाजारू जादू का परिणाम है। बाजार उसे यह विश्वास दिलाता है कि वर्तमान जीवन अपर्याप्त है और सुख, सम्मान तथा सफलता कहीं आगे, किसी नए उपक्रम में छिपी है। जादूगर का मन को उछालना इस अस्थिरता का प्रतीक है, जिसमें आधुनिक मनुष्य लगातार जी रहा है। वह कभी संतुष्ट नहीं हो पाता, क्योंकि बाजार उसे निरंतर नई इच्छाओं से भरता रहता है। इस प्रकार बाजारवाद का यह जादू मनुष्य को भीतर से खाली करता हुआ बाहर से चमकदार बना देता है। कहानी का यह रूपक न केवल आर्थिक यथार्थ को उजागर करता है, बल्कि आधुनिक समाज की मानसिक और सांस्कृतिक विडंबना को भी गहराई से रेखांकित करता है।

पारंपरिक व्यवसायों का स्वरूप और सांस्कृतिक महत्त्व
"प्रतियोगी" कहानी में जलेबी, कचरी और पिअजुआ जैसे पारंपरिक व्यवसाय केवल रोज़गार के साधन नहीं हैं, बल्कि वे कस्बाई जीवन की सांस्कृतिक पहचान से गहरे जुड़े हुए हैं। ये खाद्य–वस्तुएँ पीढ़ियों से चली आ रही लोक–परंपराओं, स्वाद–संस्कृति और सामूहिक स्मृति का हिस्सा हैं। चिल्लागंज चौमुहानी पर इन व्यवसायों की मौजूदगी वहाँ के सामाजिक जीवन को जीवंत बनाती है और लोगों के बीच अपनत्व का भाव पैदा करती है।
दुलारी और मुसमातिन के लिए यह व्यवसाय मात्र पेट भरने का जरिया नहीं, बल्कि उनकी अस्मिता और आत्मसम्मान का आधार है। इन पारंपरिक व्यवसायों में श्रम, अनुभव और लोकबुद्धि का समन्वय दिखाई देता है। इनके माध्यम से स्त्रियाँ न केवल आर्थिक रूप से सक्रिय हैं, बल्कि सामाजिक स्पेस में अपनी उपस्थिति भी दर्ज कराती हैं।
कहानी यह स्पष्ट करती है कि जब बाजार का नया, चमकदार और 'आधुनिक' स्वाद इन पारंपरिक वस्तुओं को पीछे धकेल देता है, तो यह केवल आर्थिक क्षति नहीं होती, बल्कि सांस्कृतिक विघटन भी होता है। पारंपरिक व्यवसायों के संकट का अर्थ लोक–संस्कृति के क्षरण से है, जिसमें स्थानीय पहचान, स्मृति और जीवन–शैली धीरे–धीरे हाशिये पर चली जाती है।

छक्कन प्रसादः बाजारवाद की आकांक्षाओं का सशक्त प्रतिनिधि
छक्कन प्रसाद का चरित्र "प्रतियोगी" कहानी में बाजारवाद से उत्पन्न नई आकांक्षाओं का सशक्त प्रतिनिधि है। वे पारंपरिक जलेबी–कचरी के व्यवसाय से जुड़े होने के बावजूद उससे संतुष्ट नहीं हैं। उनके भीतर बार–बार यह प्रश्न उठता है कि क्या

उनका जीवन इसी सीमित दायरे में बीत जाएगा। यह असंतोष स्वाभाविक नहीं, बल्कि बाजार द्वारा निर्मित है, जो व्यक्ति को लगातार यह एहसास कराता है कि उसका वर्तमान अपर्याप्त है और वास्तविक सफलता कहीं आगे छिपी हुई है।

बाजार छक्कन प्रसाद को बड़े सपने दिखाता है—आधुनिक दुकान, नया स्वाद, अधिक मुनाफा और सामाजिक प्रतिष्ठा। इसी प्रभाव में वे पारंपरिक व्यवसाय छोड़कर फास्ट–फूड की ओर अग्रसर होते हैं। उनके लिए अब सफलता का अर्थ है अधिक बिक्री, चमक–दमक और भीड़। इस प्रक्रिया में वे स्वयं बाजार की चालों का हिस्सा बन जाते हैं। छक्कन प्रसाद का संघर्ष यह दर्शाता है कि बाजार व्यक्ति को अवसर तो देता है, लेकिन साथ ही उसे अपनी जड़ों से दूर भी कर देता है।

दुलारी: परंपरा, अस्मिता और आत्मसंघर्ष

दुलारी का चरित्र बाजारवाद के विरुद्ध मौन लेकिन दृढ़ प्रतिरोध का प्रतीक है। उसके लिए जलेबी और कचरी केवल व्यापार नहीं, बल्कि उसकी पहचान और जीवन का सार हैं। वह जानती है कि यदि वह छक्कन प्रसाद के साथ उनके नए व्यवसाय में शामिल होती है, तो आर्थिक सुरक्षा मिल सकती है, पर उसकी आत्मा और स्वतंत्रता खो जाएगी।

दुलारी का संघर्ष बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक है। वह बाजार की चकाचौंध को पहचानती है और समझती है कि हर नया परिवर्तन प्रगति का प्रतीक नहीं होता। उसका प्रश्न—"क्या हर नया पुराने की बलि माँगता है?"—पूरी कहानी का केंद्रीय वैचारिक प्रश्न बन जाता है। दुलारी परंपरा को जड़ता नहीं मानती, बल्कि उसे जीवन के अनुभव और स्मृति से जुड़ा मूल्य मानती है। इस प्रकार वह बाजारवाद के सामने अस्मिता और आत्मसम्मान को बचाए रखने का प्रयास करती है।

मुसमातिन: करुण और उपेक्षित पात्र

मुसमातिन "प्रतियोगी" कहानी की सबसे करुण और उपेक्षित पात्र है। वह न पढ़ी–लिखी है, न उसके पास पूँजी या रणनीति है। उसका जीवन संघर्ष, श्रम और चुप्पी से भरा है। बाजार के विस्तार के साथ ही वह सबसे पहले हाशिये पर धकेल दी जाती है। उसके पारंपरिक पिअजुआ अब नए स्वादों के सामने टिक नहीं पाते।

मुसमातिन की हार किसी शोरगुल के साथ नहीं होती; वह चुपचाप चौमुहानी छोड़कर हाट की ओर चली जाती है। यह मौन विस्थापन बाजारवाद की सबसे बड़ी त्रासदी है। उसके पास प्रतिरोध की भाषा नहीं है, न ही विकल्प। बाजार उसे यह मौका तक नहीं देता कि वह अपनी स्थिति स्पष्ट कर सके। मुसमातिन का चरित्र यह उजागर करता है कि बाजारवादी व्यवस्था में सबसे अधिक नुकसान उन लोगों का होता है, जो पहले से ही सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर हैं।

बाजारवाद और पारिवारिक संबंध

"प्रतियोगी" कहानी में बाजारवाद का प्रभाव केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह पारिवारिक संबंधों की संरचना को भी गहराई से प्रभावित करता है। छक्कन प्रसाद और दुलारी के दाम्पत्य संबंध इसका प्रमुख उदाहरण हैं। बाजार के प्रभाव में छक्कन प्रसाद आगे बढ़ने, मुनाफा कमाने और आधुनिक बनने की आकांक्षा से संचालित होते हैं, जबकि दुलारी परंपरा, स्मृति और आत्मसम्मान से जुड़ी रहती है। इस वैचारिक अंतर के कारण दोनों के बीच एक अदृश्य दूरी बनती जाती है।

बाजार सफलता की नई परिभाषा गढ़ता है, जिसमें समय, भावनाएँ और संबंध गौण हो जाते हैं। छक्कन प्रसाद की व्यस्तता और महत्वाकांक्षा पारिवारिक संवाद को सीमित कर देती है। दूसरी ओर, दुलारी का अकेलापन बढ़ता है, क्योंकि वह उस गति से स्वयं को नहीं बदल पाती जो बाजार चाहता है। इस प्रकार बाजार पारिवारिक जीवन में तनाव, चुप्पी और असंतुलन पैदा करता है। कहानी यह संकेत देती है कि जब आर्थिक उन्नति संबंधों की कीमत पर होती है, तो परिवार का भावनात्मक ताना–बाना कमजोर पड़ने लगता है।

उपभोक्ता संस्कृति बनाम सांस्कृतिक स्मृति

"प्रतियोगी" में उपभोक्ता संस्कृति और सांस्कृतिक स्मृति के बीच गहरा द्वंद्व दिखाई देता है। जलेबी, कचरी और पिअजुआ जैसी वस्तुएँ सांस्कृतिक स्मृति का प्रतीक हैं, जो पीढ़ियों से लोकजीवन का हिस्सा रही हैं। इनके साथ स्वाद, अनुभव और अपनापन जुड़ा हुआ है। इसके विपरीत चाउमीन, सॉफ्टी, कोल्ड ड्रिंक जैसी वस्तुएँ उपभोक्ता संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो तात्कालिक आकर्षण और दिखावे पर आधारित हैं।

बाजार नई पीढ़ी को यह विश्वास दिलाता है कि विदेशी और नया ही श्रेष्ठ है, जबकि देसी और पुराना पिछड़ा हुआ है। यह सोच धीरे–धीरे सांस्कृतिक स्मृति को कमजोर करती है। कहानी यह दिखाती है कि स्वाद का यह परिवर्तन केवल भोजन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि जीवन–दृष्टि को भी बदल देता है। उपभोक्ता संस्कृति स्मृति की जगह आदतें और चाहतें पैदा करती है, जिससे लोकपरंपराएँ हाशिये पर चली जाती हैं।

निष्कर्ष

"प्रतियोगी" कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि बाजारवाद केवल आर्थिक संरचना नहीं, बल्कि एक वैचारिक व्यवस्था है, जो मानवीय मूल्यों को प्रभावित करती है। पारंपरिक व्यवसायों का संकट दरअसल उस मूल्य–संकट का प्रतीक है, जिसमें श्रम, अनुभव और स्थानीय संस्कृति का महत्व घटता जा रहा है।

कहानी यह प्रश्न उठाती है कि क्या विकास का अर्थ केवल मुनाफा और प्रतिस्पर्धा है। दुलारी का संघर्ष, मुसमातिन की चुप हार और छक्कन प्रसाद की सफलता—तीनों मिलकर बाजार की असमान प्रकृति को उजागर करते हैं। अंततः यह रचना पाठक को इस निष्कर्ष तक पहुँचाती है कि यदि बाजार के साथ मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक जिम्मेदारी नहीं जुड़ी, तो विकास एकांगी और अमानवीय हो जाएगा।

संदर्भ सूची

1. नीलाक्षी सिंह कहानी संग्रह– "परिंदे का इंतजार सा कुछ" सेतु प्रकाशन, नोएडा, 2022
2. नामवर सिंह, कहानी: नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
3. वेद प्रकाश सिंह, हिन्दी कहानी और भूमंडलीकरण, लिटल बर्ड पब्लिकेशन , दिल्ली, 2024
4. विष्णु खरे, आधुनिकता के आईने में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
5. शंभूनाथ, साहित्य का समाजशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
6. उमेश चतुर्वेदी, बाज़ारवाद के दौर में मीडिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
7. प्रभा खेतान, बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
8. डॉ. रब्बानी शेख, हिंदी उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन, विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर, 2007
9. मंजु जैन, कार्यशील महिलाएँ एवं सामाजिक परिवर्तन, प्रिंटवैल प्रकाशन, जयपुर, 2004
10. राजकुमार, नारी शोषण: समस्याएँ एवं समाधान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006
11. डॉ. घनश्याम, समकालीन हिंदी कहानियों में नारी के विविध रूप, अतुल प्रकाशन, कानपुर, 1993
12. राजेन्द्र यादव, कहानी: स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000